6
भाषा का विकास

भाषाएँ कैसे विकसित हुईं व कैसे बदलीं, यह एक व्यापक प्रश्न है। यह लेख इस प्रश्न की शुरुआती परतों को खोलता भर है। यह भाषा के बदलाव व विकास का इन्सान के जैविक, सांस्कृतिक व सामाजिक बदलाव के साथ जो सम्बन्ध है, उसके आयाम सामने रखता है और यह भी बताता है कि कैसे भाषाओं में सांस्कृतिक रीति-रिवाज़ों की, इतिहास की, व सामाजिक स्तरीकरण की झलक दिखती है। यह भाषा के विकास को इन्सान के समाजीकरण की आवश्यकता के दायरे में रखता है और उसी को इन्सानी भाषा के विकास का आधार भी मानता प्रतीत होता है।

हम भाषा के बदलाव का अध्ययन करते हुए उसकी नियमावली के बदलाव पर तो ध्यान देते हैं, पर उस बदलाव के बहुत सारे पहलुओं को भूल जाते हैं। ये पहलू भाषा को बोलने वाले समूह के ऐतिहासिक सन्दर्भ से व उनके समाज की सम्प्रेषण की ज़रूरतों से जुड़े हैं। चूँकि अलग-अलग सामाजिक परिवेशों में, अलग-अलग भाषाएँ पाई जाती हैं, इसलिए सामाजिक परिवेश का भाषा पर प्रभाव स्पष्ट सामने आता है। इन सब बातों का भाषा के स्वरूप और उसके विकास के साथ सम्बन्ध है। भाषा का विकास व स्वरूप एक ऐसा मुद्दा है, जो सिर्फ भाषा को ही नहीं, अपितु मानव विकास और मानव-प्रकृति के बिन्दुओं को भी गहराई से छूता है।

भाषा का उपयोग हम अपने दैनिक जीवन में हर प्रकार के सम्प्रेषण के लिए करते हैं। जाने कितनी ही भाषाएँ मानव द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं। सामान्य तौर पर भाषा के बारे में बहुत गहराई से नहीं सोचा जाता। आम तौर पर भाषा को शब्दों के व्यवस्थित नियमों (जिसे व्याकरण कहते हैं) के तहत व्यक्त करने व निर्धारित लिपि में लिखने तक ही देखा जाता है। किन्तु भाषा के और भी कई पहलू हैं। मसलन, हर भाषा में उन सामाजिक परिस्थितियों

की झलक मिलती है जिसमें वह भाषा विकसित हुई है। उसमें उस समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज़ व इतिहास की भी झलक मिलती है। इन सबके अलावा भाषा के अध्ययन से खुद भाषा के विकास का इतिहास सामने आता है। उसके अध्ययन से यह भी उभरता है कि किसी भाषा को स्थापित करने वाले कौन लोग रहे हैं और वे किस आर्थिक-सामाजिक समूह के प्रतिनिधि थे। भाषा की शब्दावली में इस प्रकार के अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं। इसमें से एक उदाहरण हम सिर्फ इस मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए दे रहे हैं। आम बोलचाल की भाषा, जिसे हम शायद हिन्दुस्तानी कह सकते हैं, में 'कमीना' एक गाली के रूप में उपयोग में लाया जाता है। उत्तरप्रदेश में खेतिहर मज़दूरों की एक जाति है जो 'कामीन' नाम से जानी जाती है। इसी प्रकार का उदाहरण अँग्रेज़ी से लेते हैं, 'विलेन' (villain) शब्द का उपयोग खलनायक के लिए होता है और अँग्रेज़ी ज़मींदारों व बड़े-बड़े भूस्वामियों के यहाँ काम कर रहे गुलामों को भी 'विलेन' कहा जाता था। ये मात्र दो उदाहरण हैं, शब्दावली के इन सवालों के एक ही पहलू पर। भाषा के सन्दर्भ में उसके विभिन्न पहलुओं व उनके अन्तर्सम्बन्धों से जुड़े और भी बहुत से सवाल हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है।

इस लेख में हम भाषा की उत्पत्ति के सम्भावित कारणों व तरीकों के बारे में मोटे रूप में देखेंगे। चूँकि आज हम एक काफी विकसित भाषा प्रयोग करते हैं, इसलिए यह कल्पना करना मुश्किल हो जाता है कि ऐसा भी समय रहा होगा जब कोई भाषा नहीं थी। वे परिस्थितियाँ क्या थीं जिन्होंने मनुष्य को भाषा विकसित करने के लिए मजबूर किया? इस मुद्दे को समझने में हमें पशुओं के व्यवहार का अवलोकन करने से कुछ दिशा मिल सकती है। वे किन स्थितियों में और किस तरह की आवाज़ें निकालते हैं? मनुष्य की भाषा (बोली) और पशुओं की आवाज़ में क्या समानता है और क्या फर्क है? क्या कभी मनुष्य भी पशुओं जैसी ही आवाज़ भर निकाल पाता था? क्या मनुष्य जाति के प्राकृतिक विकास के साथ-साथ ही उसकी भाषा विकसित हुई? आदिकाल से लेकर अब तक के मानव समाज के विकास के साथ-साथ मनुष्य की भाषा का विकास कैसे हुआ? इन दोनों में कोई सम्बन्ध है क्या? भाषा बदलती है - तो किन कारणों से?

आज इन्सानी भाषा अन्य प्राणियों की भाषा से बहुत अलग व बहुत ही सशक्त है। इसमें बेइन्तिहा उत्पादन व सृजन हो सकता है। विचारों को गढ़ा व संजोया जा सकता है। अलग-अलग भाषाओं में कई तरह से विमर्श किया जाता है और इस विमर्श के दायरे व स्वरूप वहाँ के लोगों और उस समय के हालात से प्रभावित होते हैं। अलग-अलग जगह पर और उसमें भी अलग-अलग समय पर भाषाओं के स्वरूप पर उनका प्रभाव होता रहता है। यह कहा जा सकता है कि भाषा के विकास में दो या ज़्यादा इन्सानों के मिलजुल कर काम करने के लिए, चाहे वह शिकार हो या समूह रक्षा, उनके बीच ऐसा आदान-प्रदान होने की जरूरत है और उस समय भी होगी ताकि एक-दूसरे की मंशाओं, काम करने के ढंग, इच्छाओं, व क्षमताओं को समझा जा सके। किसी भी सामूहिक प्रयास में एक-दूसरे की भूमिका को समझकर व संकेतों के आदान-प्रदान के द्वारा ही किसी कार्ययोजना को वास्तविक और परिवर्तनशील परिस्थिति में लागू किया जा सकता है। सवाल यह है कि यूँ साथ काम करने, एक-दूसरे के साथ रहने, एक-दूसरे के संकेत पहचान पाने आदि की शुरुआत कैसे हुई होगी और यह कैसे ज्यादा

विकसित व व्यापक बनी। इसके अलावा यह भी प्रश्न है कि इन शुरूआती संवाद के संकेतों में क्या-क्या विकास व परिवर्तन हुआ है तथा आगे क्या और भी गुंजाइश है अथवा अब यह इन्सान के गुणसूत्रों का हिस्सा बन गई है व अन्य रचनाओं की तरह स्वतः विकसित होने के कारण उसी दायरे में इसमें विकास सम्भव है। यह भाषा के धीरे-धीरे विकास के आधार पर बनी समझ है।

इन मुद्दों को लेकर कई तरह की परिकल्पनाएँ हैं। इन में एक परिकल्पना तो यह भी है कि जो कुछ भी आज हमारे सामने है वह हमेशा से ऐसा ही था और रहेगा। मानव समाज और खुद मानव कैसे बना, क्यों बना, ऐसे सवालों का इस मान्यता के तहत कोई स्थान ही नहीं है। इसी प्रकार से कुछ और कल्पनाएँ हैं, जैसे मानव सर्वशक्तिमान ईश्वर द्वारा बनाया गया है और उसी ईश्वर ने खुश होकर मनुष्य को ज्ञान का वरदान दिया। यानी जो कुछ है, प्रभु की देन है। प्राचीन कहानियों में एक ऐसा भी बड़ा पुट रहा है जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा सीखे गए कौशल को दैव कृपा या दैवीय शक्ति की संज्ञा दी गई है। साधना को हमेशा एक आध्यात्मिक स्वरूप देकर प्रस्तुत किया गया है, औषधि के ज्ञान कौशल को अश्विनी कुमार के वरदान की संज्ञा दी गई। और इसी तरह, भाषा व उसके उपयोग को सरस्वती के वरदान की। भाषा के बारे में इसी किस्म की और भी कई धारणाएँ हैं। इन अवधारणाओं में भाषाओं के विकास के साथ-साथ उनके एक दूसरे के समकक्ष प्रतिष्ठा व क्षमता दोनों के बारे में ऐसी धारणाएँ शामिल होती हैं, जो भाषाओं को बुनियादी तौर पर ही गैर-बराबर मानती हैं।

लेकिन हम अगर इतिहास में झाँककर देखें तो पाएँगे कि न तो सब कुछ आज जैसा था और न ही भगवान की कृपा से अचानक बन गया। और यह किसी अकेले व्यक्ति के कौशल या शौर्य का भी सवाल नहीं है कि उसने कुछ सिद्धि प्राप्त कर ली या कोई खोज की। ऐसा लगता है कि मानव ने जो भी बनाया अपने सामूहिक प्रयास और चेष्टा से बनाया। अपनी अहम ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बनाया। भाषा का विकास भी इन्सान व प्रकृति के पारस्परिक अन्तःसम्बन्ध व सामाजिक विकास के कारण ही हुआ। इसी से एक और परिकल्पना उभरती है कि मानव ने श्रम के समय सहयोग के लिए एक-दूसरे से सम्प्रेषण की आवश्यकता महसूस की। प्राकृतिक परिस्थितियों में मानव बहुत शक्तिशाली नहीं था और न ही उसके पास बचने के कोई साधन मौजूद थे। वह न तो तेज़ भाग पाता था और न ही कुछ जानवरों की तरह पेड़ों पर चढ़कर रह पाता था। उसकी शारीरिक बनावट सपाट मैदान पर रहने के लिए उपयुक्त थी। इसलिए अपने बचाव के लिए मनुष्य को पारस्परिक सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता थी। उसका अकेले बच पाना मुश्किल था। (कई पशु भी तरह-तरह के समूहों व गुटों में रहकर बचाव करते हैं)। लेकिन मानव मस्तिष्क इतना विकसित था कि उसके उपयोग की बहुत-सी सम्भावनाएँ थी। इसके अलावा मनुष्य के हाथ के अँगूठे के स्वतंत्र रूप से घूम पाने के कारण हाथ के उपयोग की कई नई सम्भावनाएँ सामने आईं जो कि पशुओं को उपलब्ध नहीं थीं। मनुष्य के लिए प्रकृति में ही उपस्थित वस्तुओं का औज़ार के रूप में प्रयोग करने के अलावा, प्रकृति में उपलब्ध सामग्री व साधनों से खुद औज़ार बनाना भी सम्भव था। कुछ पशु प्रकृति में उपलब्ध वस्तुओं का प्रयोग इस तरह से करते हैं कि उसे औज़ार की संज्ञा दी जा सकती है,

लेकिन औज़ार बनाना उनके लिए सम्भव भी नहीं है और बहुत ज़रूरी भी नहीं। उनके पास तो ज़िन्दा औज़ार होते है - दाँत, पंजे आदि। इसके अलावा जानवरों को अपने बच्चों को दाँत व पंजों का उपयोग करना सिखाना नहीं पड़ता, वे तो यह देख-देखकर ही सीख जाते हैं। यही कारण है कि पशुओं के लिए बोलना जानना ज़रूरी नहीं है। पर मनुष्य के लिए दूसरे मनुष्यों व अपने बच्चों को औज़ार बनाना सिखाना ज़रूरी था और उनका उपयोग करना सिखाना ज़रूरी था। इस ज़रूरत ने भी उसे भाषा विकसित करने के लिए बाध्य किया। इसके अलावा इसपर भी काफी विवेचन हुआ है कि कैसे भाषाएँ क्षमता में बराबर सम्भावनाएँ रखती हैं।

इस पर्चे में हमने सिर्फ एक मसले पर चर्चा की है कि इन्सानी भाषा की शुरूआत कैसी हुई होगी। चूंकि इन्सानी भाषाई क्षमता बाकी पशुओं की क्षमता से बहुत फर्क है इसलिए इस क्षमता के विकास को समझना एक रोचक प्रश्न है। हालांकि जैसा हमने कहा कि वह मान्यता जो इसे ईश्वर-रचित व दैवीय प्रदत्त मानती है उसके लिए यह और जैविक विकास के अन्य मुद्दे गैर-जरूरी हैं। किन्तु इस प्रश्न के प्रकृति-आधारित उत्तर खोजने के लिए कई पहलुओं पर विचार किया गया है। एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या यह क्षमता जैविक है और इन्सान के गुणसूत्रों के विकास के कारण अस्तित्व में आ गई है, या फिर यह एक इन्सान की सामाजिक अन्तःक्रिया का नतीज़ा है, या फिर यह इस सामाजिक अन्तःक्रिया की जरूरत के चलते इन्सान के जैविक विकास के कारण है।

स्रोत

- हृदय कान्त दीवान, होशंगाबाद विज्ञान बुलेटिन, दिसम्बर 1984, अंक 15, पृ 21-23। (https://www.eklavya.in/pdfs/archives/vigyan_bulletin/Hoshangabad_Vigyan_Bulletin_issue_15.pdf)